तारतम मंजरी

वर्ष १ अंक १२ अप्रैल २०१६ पृष्ठ २८

ब्रह्मज्ञान ही अमृत है

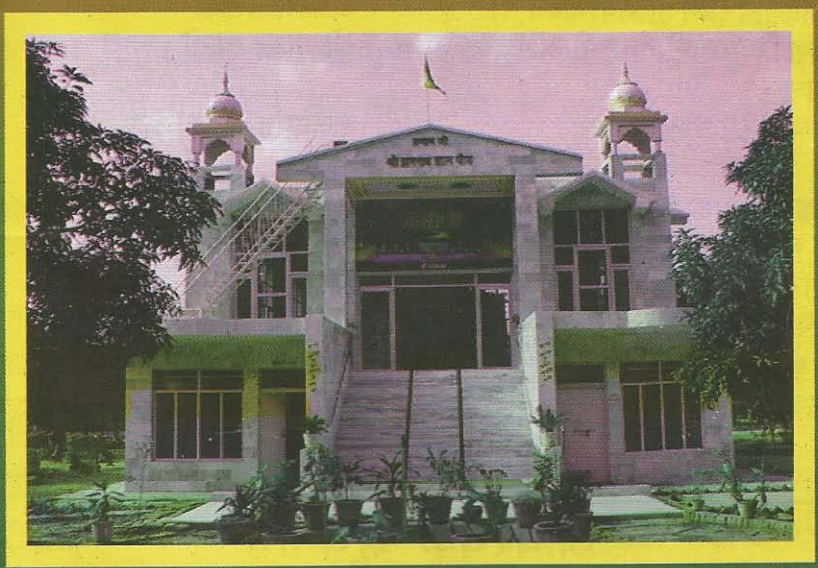

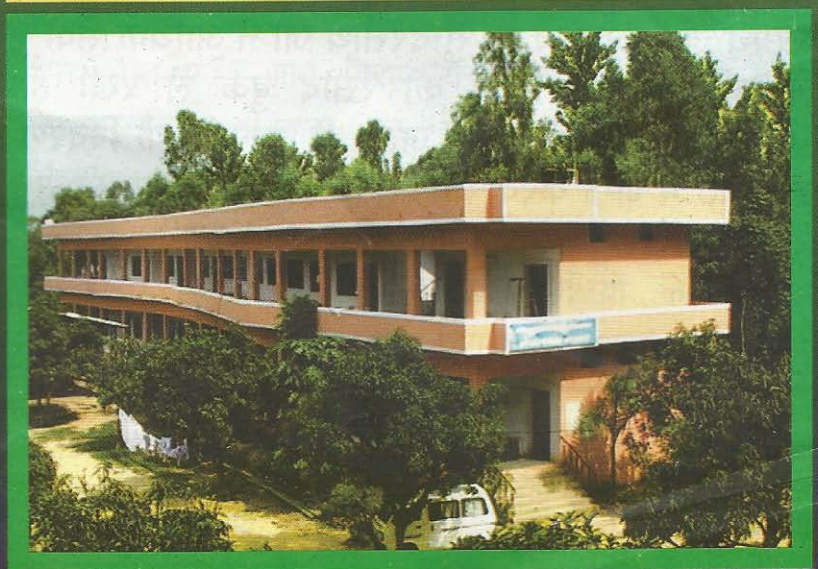

प्रेम ही जीवन है

स्वत्वाधिकारी :

श्री प्राणनाथ ज्ञान पीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, जिला-सहारनपुर, उ.प्र.

फोन नं. : ०१३३१.२४६०००, ८६५०८५१०१०

ई-मेल : shriprannathgyanpeeth@gmail.com. web : spjin.org

अनुक्रमणिका

इस अंक में.....

०१. सम्पादकीय (प्रेम ही जय जीवन में)	अमरलाल सेठी	०१
०२. कलश हिन्दुस्तानी टीका के अंश	श्री राजन स्वामी	०५
०३. समाधान	.....	०६
०४. धर्म का तीसरा लक्षण-दम	राजबाला, बेहट	१०
०५.मदद	.....	१४
०६. सच्चा जीवन	.....	१५
०७. रस मगन भई सो क्या गावे	किरन माता जी, सरसावा	१६
०८. जागरूक	पुकार, ज्ञानपीठ	२०
०९. सद्कर्तव्य	.....	२१
१०. प्रेम के चांद के अनमोल वचन	संकलन कर्ता बृजेश, गुजरात	२३
११. आपके लेखों के सम्बन्ध में.....	.....	२८

आवश्यक सूचनायें

प्यारे सुन्दरसाथ जी! जिस किसी सुन्दरसाथ जी ने आर्थिक सेवा एकत्र करने हेतु पिछले सत्र या सन् 2015 की रसीद बुक ले रखी हैं कृपया वे अपनी–अपनी सत्र की रसीद बुक जल्द ही धनराशि के विवरण सहित श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ में जमा करवाने का कष्ट करें तथा आगामी सन् 2016 की कोई भी रसीद काटने हेतु नये सत्र की रसीद बुक ज्ञानपीठ से पुनः प्राप्त करें।

प्रणाम जी

प्रकाशक :–
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट,
नकुड़ रोड, सरसावा
जिला–सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
फोन – 01331 246000, 246871
वेबसाईट :– www.spjin.org
ई मेल :– shriprannathgyanpeeth@gmail.com

सदस्यता शुल्क

भारत में	विदेश में
वार्षिक 110 रू.	.....
आजीवन 1000 रू.	.....

लेख में प्रगट किये गये विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं इनके प्रति सम्पादक, प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र सहारनपुर होगा।

सम्पादकीय

'प्रेम की ही जय जीवन में'

वास्तव में प्रकृति मानव मन के सर्वाधिक निकट रही है। प्रकृति में जीवन सत्ता का अनुभव ही मानव की चेतना को प्रेरित करता है। भाव–विरही उस काल परिवर्तन की प्रक्रिया में अपने आप को साक्षी भोक्ता बन कर, अपने आप को परिवर्तन में ढाल कर अनुभव करने लगता है। विरह की दहकता में ही प्रिय दर्शन सम्भव है। पिछले अंक अक्तूबर 15 में हमने नागमति का विरह वर्णन पढ़ा आओ। इस माह हम रामायण को उपेक्षित पात्र उर्मिला का विरह गीत पढें। ज्ञान–विरह की तुलना में प्रेम–विरह–भावुकता का परिणाम है उर्मिला के विरह में– प्रिय पंथ को देखते–देखते आँखों में झांई पड़ना, नाम पुकारते–पुकारते जीभ में छाले पड़ना, हड्डियां लकड़ी समान, सिर श्री फल और मांस, भीजा, लहू आदि होमाग्नि की समिधा नहीं बनती। न ही प्रिय के प्रति कोई उपालम्भ है। जैसे बुद्ध की पत्नी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! मुझ से कह कर जाते। उनकी विरह– भावना अनुभूति की सच्चाई की निश्छल आत्माभिव्यक्ति है। उनकी विरह वेदना पारिवारिक–सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। सब कुछ सहन करने का स्वभाव या आचरण के अनुरूप में देखा जा सकता है। प्रिय वियोग की पीड़ा को ही स्वयं झेलती हैं।

वर्षाऋतु समाप्त हो गई है। शरद ऋतु आरम्भ हो रही है। विरहणी उर्मिला शरद ऋतु को कोसती नहीं उसका स्वगत करती हुई कहती है कि देख सखी ये खंजन पक्षी आ गए हैं (खंजन पक्षी की आँखें बड़ी ही सुन्दर होती हैं, खंजन शरद का सूचक है) मुझे ऐसा लगता है जैसे आनन्द देने वाले प्रियतम ने इन खंजन पक्षियों के रूप में मुझे सुन्दर लगने वाले अपने नेत्र मेरी ओर घुमा दिये हों। चारों ओर धूप के रूप में प्रियतम के शरीर की (तपस्या के कारण उत्पन्न) गर्मी फैली हुई है और उन के मन की सरसता और सनिग्धता के कारण सरोवर कमल के फूलों से खिल उठे हैं अर्थात कमलों

से भरे सरोवर को देख कर मेरा मन ऐसे प्रसन्न हो उठा है, मानो उसे प्रियतम के सरस स्निग्ध शरीर की समीपता प्राप्त हो गई हो। वहाँ वन में प्रियतम घूम रहे होंगे और उस मन्द–मन्द गति का स्मरण दिलाने के लिए ही ये हंस उड़ कर यहां आ गए हैं। प्रियतम वन में मेरी याद कर के अवश्य मुस्काएं होंगे, तभी तो यहाँ ये कमल खिल उठे हैं और लाल रंग के फूल प्रियतम के लाल अधरों के समान सुन्दर लग रहे हैं। उर्मिला कहती है कि हे शरद! तुम्हारा स्वागत है। मेरा अहोभाग्य है जो तुम्हारे दर्शन पाए। आकाश ने तुम्हारे स्वागत में ओस की बूँदो के रूप में असंख्य मोती न्योछावर किए हैं लो मेरे ये नेत्र तुम्हारे स्वागत के लिए आँसूरूपी अर्घ्य लेकर प्रस्तुत हैं।

विरह से पीड़िता उर्मिला अब शिशिर ऋतु से प्रार्थना करती हुई कहती है कि हे शिशिर! तू पर्वतों और वनों में मत घूम । तू जितना भी पतझड़ चाहे अर्थात जितने पत्ते चाहे वे सारे मैं तुझे अपने नन्दनवन के समान इस शरीर से ही दे दूंगी। तात्पर्य यह है कि पतझड़ में वृक्षों के पीले पत्ते झड़ते रहते हैं। उर्मिला अपने शरीर के विभिन्न अंगों को ही पत्तों के रूप में प्रस्तुत करती है क्यों कि वियोग के कारण उसके शरीर के सारे अंग पत्तों के समान पीले पड़ कर नष्ट होते जा रहे हैं। यदि तुझे दूसरों को कपाना अच्छा लगता है तो तुम्हें जितनी कँप–कँपी चाहिए वह मेरे इस शरीर से ही ले–ले अर्थात मैं प्रिय–विरह के कारण इस शीत में निरन्तर काँपती रहती हूँ।

उर्मिला कहती है कि हे शिशिर! यदि तुझे पीलापन अधिक पसंद है तो तू उसे मेरे मुख से ले–ले क्योंकि– मेरी सखी कह रही है कि मेरे मुख पर पीले पन की कोई कमी नहीं अर्थात् विरह के कारण मेरा मुख पूरी तरह से पीला पड़ गया है। हे भाई! यदि तू मेरे मन रूपी पात्र में मेरे नेत्रों के जल को जमा दे तो मैं गरीब उसे अपने मन में मोती सा बहुमूल्य समझ कर सुरक्षित रखूँगी अर्थात मैं अपने आँसुओं को मन ही मन में पीती हुई धैर्य धारण करती रहूँगी। मेरी हँसी तो चली गई है क्या मैं अपने जीवन में रो भी न सकूँ अर्थात यदि मेरा रोना और हँसना दोनों ही बन्द हो जाएँगे तो फिर मैं जीवित कैसे रह सकूँगी? ऐसी स्थिति में मैं यह जानने के लिए आतुर हूँ कि हँसना और रोना दोनों ही छिन जाने के बाद मेरे

इस भाव रूपी संसार में फिर क्या हल चल शेष रह जाएगी अर्थात मेरे हृदय में और कौन–कौन से भाव उत्पन्न हो पाएँगे?यह है विरहिणी उर्मिला के मानसिक और शारीरिक विषाद की सम्पूर्ण हृदयग्राही परिस्थिति।

बसन्त ऋतु का सुहावना समय है। चारों ओर खिले हुए फूल अपने रंग रूप से अपूर्व मादकता बिखेर रहे हैं, परन्तु विरहिणी उर्मिला को बसन्त ऋतु कष्टकारी प्रतीत हो रही है। उर्मिला काम व्यथित होने पर कामदेव से प्रार्थना करती है कि कामदेव! तुम मुझे अपने पुष्पबाणों से घायल मत करो क्योंकि एक तो मैं अबला हूँ, दूसरे युवती हूँ और तीसरे वियोगिनी हूँ। मेरी इस दशा को देख कर मेरे ऊपर कुछ तो दया करो। तुम बसन्त के मित्र और चतुर हो, इस लिए मुझ पर विष की वर्षा मत करो अर्थात् मेरे प्रति इतनी निष्ठुरता मत दिखाओ। तुम्हारे पुष्पबाण के प्रहार से मेरा मन व्याकुल हो जाता है और तुम्हें विफलता मिलती है। तुम मुझे विचलित करने में बड़ा परिश्रम कर चुके हो, इसलिए अब विश्राम करो और अपनी थकान को दूर कर लो। भाव यह है कि लाख प्रयत्न करने पर भी तुम मुझे अपने व्रत और संयम से न डिगा सकोगे, चाहे तुम मुझे कितना ही दुःख क्यों न दे लो। मैं भोग–विलास की इच्छा करने वाली कोई विलासिनी नारी नहीं हूँ , जिसे अपने जाल में फँसाने के लिए तुमने इतना सारा प्रपंच फैला रखा है। यदि तुम में शक्ति है तो तुम शिव नेत्र के समान बाधाओं को भस्म कर देने वाले मेरे इस सिन्दूर बिन्दू की ओर देखो (अपने सिन्दूर– बिन्दू को शिव नेत्र के समान दाहक बता कर धमकी देती है)

उर्मिला कहती है कि हे कामदेव ! यदि तुम्हें अपने रूप सौन्दर्य पर गर्व है तो तुम अपने इस गर्व को मेरे प्राण प्रीतम के चरणों पर न्योछावर कर दो अर्थात सौन्दर्य में तो तुम मेरे पति के चरणों की धूल के समान भी नहीं हो। यदि तुम्हें इस बात का घमण्ड हो कि तुम्हारी स्त्री रति सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी है तो तुम मेरे चरणों की इस धूल को रति के सिर पर रख देना। पतिव्रत और अपने पति लक्ष्मण के सौन्दर्य के प्रति उर्मिला का गर्व दर्शनीय है। श्लाधय है।

उर्मिला को अपने प्रिय का विरह असह्य हो उठा वह उनकी समीपता पाने के लिए अत्यधिक व्याधिक व्याकुल हूं।

प्रिय मिलन की तीव्र अंकाक्षा इस प्रकार व्यक्त करती है। उनका कहना है कि जी चाहता है कि सब राजमहल और उसका सम्पूर्ण वैभव को त्याग कर वन में रहने लगूँ पर वह प्रिय के व्रत में बाधक नहीं बनना चाहती ताकि मेरी यह विरह व्यथा यथावत बनी रहे । वह तो झुरमुट की ओट से ही प्रियतम के दर्शन कर के सुखी होना चाहती है। उसकी तमन्ना है कि जब पति मेरे सामने से निकल जाएँ तो मैं उस मार्ग की धूल में लोटती हुई लेटी रहूँ। जैसे जायसी की नागमती भी प्रियतम के मार्ग पर स्वयं कों बिछा देना चाहती है–

यह तन जारौं छार के, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग गिर पड़ै, कंत धरैं जहाँ पाव।।

पीड़ा और व्यथा की स्थिति में भी उर्मिला एक ऐसा सन्देश देना चाहती है जो आज भी हमारे लिए अनुकरणीय है। संसार में लोग सत्ता अथवा धन प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के दुष्कर्म करते हैं जैसे कैकेयी ने किया। अपने पुत्र भरत के लिए राज–सुख की लालसा से राम के अधिकारों का अतिक्रमण किया और राज सत्ता के लोभ में पति के प्राणों का भी ध्यान नही रखा। सभी रिश्ते नातों का दर किनारे करते हुए केवल सत्ता सुख को महत्व दिया। इस के विपरीत माता सुमित्रा ने प्रेम त्याग और बलिदान का परिचय दिया। उनका पुनीत कार्य सर्वत्र सराहनीय है प्रेम और त्याग भावना का परिचय देने वालों का ही जीवन सफल और सार्थक होता है। इसीलिए उर्मिला कहती है कि मेरी यही हार्दिक मनोकामना है कि जीवन में प्रेम की यह महत्ता संसार के अस्तित्व पर्यन्त बनी रहे।

प्रेम की ही जय जीवन में।
यही आता है इस मन में ।।

प्राण आधार सुन्दर साथ जी, कहलाने को तो हम परमधाम की ब्रह्मागनाएँ हैं। जीव सृष्टि से कहीं उच्चतम मानती हैं। क्या हमारी रहनी, हमारा आचरण अन्यों से बेहतर है?क्या हम राग, द्वेष, ईर्ष्या, सत्ता लोलुपता से उभर पाए हैं ? क्या हम अपने सतकर्मों में रत रहते हुए दूसरों का शोषण तथा अधिकारों का अतिक्रमण करने में परहेज करते हैं? सही मायनो में ब्रह्मसृष्टि कह लाने के वही अधिकारी हैं जिनके हृदय में सदैव अपने प्रीतम धाम धनी की छबि समाई रहती है। काश! हम भी उर्मिला की सीख पर कुछ अमल कर सकें।

अमर लाल सेठी
अबोहर
094632–33945

कलश हिन्दुस्तानी टीका के अंश

टीका कर्ता - श्री राजन स्वामी

।।विरह तामस का प्रकरण–राग सिंधूड़ो कड़खा।।

मैं चाहत न स्वांत इन भांत,

अपने प्राणवल्लभ की सानिध्यता को प्राप्त करने के लिये जल विहीन मछली की भांति इस प्रकार तड़पना कि मेरे प्राणेश्वर अभी आ गये, विरह कहलाता है। विरह की नौ अवस्थायें होती है – स्वयं के प्रति अवहेलना, विषाद, दीनता, दुःख, स्मृति, चिन्ता, उन्माद, मोह तथा प्रियतम को देखने की तीव्र उत्सुकता। सात्विक विरह प्रथम अवस्था है। इस अवस्था में आंसू भी बहते हैं तथा हृदय विरह की पीड़ा से चीत्कार कर रहा होता है, किन्तु धैर्य होता है। इसके विपरीत तामस विरह में न तो आंसू बहते हैं, और न रोना आता है। केवल मन में एक ही बात बस जाती है। यदि इस क्षण प्रियतम मेरे सम्मुख नहीं आये, तो मैं अपना तन छोड़ दूंगी। इन दोनों की मध्यम अवस्था को राजस विरह कहते हैं। हब्शे में श्री मिहिरराज जी (श्री इन्द्रावती जी के जीव) का हृदय विरह की इन तीनों अवस्थाओं से होकर गुजरता है। विरह में तड़पते–तड़पते छः मास व्यतीत हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप तामस का विरह अपने प्रचण्ड रूप में प्रकट होता है। स्थिति ऐसी हो जाती है कि–

जब आह भी सूकी अंग में, स्वांस भी छोड़यो संग।

तब तुम परदा टाल के, दियो मोहे अपनो अंग।। क. हि. ८/८

वस्तुतः यही तामस का विरह है। इसे लालदास जी एवं गोवर्धन दास जी के विवाद के कारण श्री प्राणनाथ जी की फटकार के घटना क्रम के रूप में नहीं लेना चाहिए। उस अवस्था में श्री इन्द्रावती जी के जीव ने कोई विरह नहीं किया, अपितु गोवर्धन जी को सूरत तथा मुकुन्द दास जी को उदयपुर भेजकर श्रीजी खिन्न मन से अनूप शहर चल पड़े थे। फटकार की घटना के इतने अल्प समय में तामस के विरह में डूबना सम्भव नहीं लगता।

मोंह आगे बिजलीय के, चमकत लेहेरां दई।

तब श्री राज के मुख से, ए बातां

पुकार कही।।

कारखाना कागद का, ए सौंप्या लालदास।

उदयपुर को जावहीं, भीम मुकुन्द मोमिन खास।।

बुध दई भीम को, गोवरधन को सूरत।

मुकुन्द भीम उदय पुर, हम जात अनूपसहर इत।।

बी. सा. ३६/१६,१७,२०

जबकि क. हि. ५/२,३ एवं ११ का कथन है–

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस।

न आवे अंदर बाहेर, या विध सूकत स्वांस।।

हाड़ हुए सब लकड़ी,सिर श्री फल विरह अगिन।

मांस मीज लोहू रगां, या विध होत हवन।।

आठों जाम विरहनी, स्वांस लिये हूक हूक।

पत्थर काले ढिग हुते, सो भी हुए टूक टूक।।

उपरोक्त चौपाइयां यही दर्शाती हैं कि तामस के विरह में डूबने का प्रसंग हब्शे का ही है।

अजूं आउध अंग चले, इन नैनों दोनों नेक न आवे नीर।

दरद देहा जरद गरद रद करे, मैं क्यों धरूं धीर अस्थिर सरीर।।१।।

श्री महामति जी की आत्मा कहती है–मेरे प्राणेश्वर! आपके विरह में तड़पते–तड़पते लगभग छः मास बीत गये। समय गुजरता रहे और आपके मधुर दर्शन रूप निर्णय के बिना मैं शान्ति पूर्वक बैठी रहूं, यह मुझे किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं है। मैं अब इस प्रकार शान्त होकर बैठे रहना नहीं चाहती। आपको पाने के लिये मेरे हृदय रूपी शस्त्रागार में श्रद्धा, समर्पण एवं विरह के सभी आयुध पूर्ण रूप से सक्रिय हैं। आपके विरह की अग्नि ने मेरे इन नेत्रों से बहने वाले आंसुओं की धारा को इस प्रकार सुखा दिया है कि अब तो एक बूंद भी आंसू नहीं टपकते। विरह की पीड़ा ने मेरे शरीर को धूल के समान इतना निर्बल कर दिया है कि वह पीला पड़ गया है। यह शरीर तो नश्वर है ही। अब मुझसे और अधिक धैर्य नहीं रखा जा सकता। अब केवल एक ही मार्ग है कि आपको अभी, इसी क्षण मेरे सम्मुख आना ही होगा।

कठिन निपट विकट घाटी प्रेम की, त्रबंक बंको सूरो किनों न

अगमाए।

धार तरवार पर सचर सिनगार कर, सामी अंग सांगा रोम रोम भराए।।२।।

प्रेम की प्राप्ति का मार्ग बहुत ही कठिन और भयावह मार्गों से होकर गुजरता है। इस मार्ग पर ज्ञान, कर्म एवं उपासना के बड़े–बड़े वीर भी पुरी तरह से नहीं चल पाते हैं। मेरी आत्मा ! अब तूं तलवार की तीखी धार के समान कष्टकारी इस मार्ग पर चलने के लिये पूर्ण समर्पण का श्रृंगार कर ले। तेरे शरीर के रोम–रोम में विरह के भालों की चुभन पीड़ा दे रही है।

भावार्थ– पर्वतों के नीचे की समतल भूमि घाटी कहलाती है। इस पर मनोरम बस्ती बसी होती है, किन्तु वहां तक पहुँचने का मार्ग दुर्गम होता है। इसी प्रकार त्रिगुणातीत प्रेम को पाने के लिये रज और तम के कष्टदायी मार्गों से होकर ही जाना पड़ता है। प्रेम मार्ग को तलवार की धार के समान तीखा कहा है क्योंकि जिस प्रकार तलवार की धार पर पैर रखते ही वह कट जाता है, उसी प्रकार प्रेम मार्ग में पल–पल भयानक कष्टों का सामना करना पड़ता है। किन्तु यदि हमने सर्वस्व समर्पण का मार्ग अपना लिया, तो हमें कष्टों से भय नहीं लगेगा। भय की उत्पति तो अहंकार से होती है। प्रियतम के प्रेम में जब सारा अहंकार समाप्त हो जाता है, तो संसार का भी अस्तित्व नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में सुख और दुःख से परे आनन्दमयी अवस्था प्राप्त हो जाती है।

सागर नीर खारे लेहेरां मार मारे फिरें, बेटो बीच बेसुध पछाड़ खावे।

खेलें मछ मिले गलें ले उछाले, संधो संध बंधे अंधों यों जो भावे।।३।।

इस भवसागर का जल अत्यन्त खारा है अर्थात् तत्व हीन है। इसका किसी भी प्रयोजन (प्रेम, शान्ति एवं आनन्द) में उपयोग नहीं हो सकता। जीव इस संसार सागर की मोह रूपी भयानक लहरों की चोट से इतना आहत हो जाता है कि वह टापुओं के बीच भिन्न भिन्न योनियों के शरीरों मे मूर्छित होकर गिर जाता है। इस मायावी सागर में

काम, क्रोध, लोभ, मद, एवं अहंकार रूपी बड़े बड़े मगरमच्छ क्रीड़ा करते हैं जो जीव के शरीर का मांस खाने के लिये उसका गला पकड़ कर उछालते रहते हैं (विकार उसे घेरे रहते हैं)। उसके शरीर के अंगों की प्रत्येक सन्धि (जीव की प्रत्येक अवस्था) कर्म फल की रस्सियों से बंधी होती है। ज्ञान चक्षु न होने से वह अन्धा हो गया होता है। ऐसी अवस्था में तो एकमात्र प्रियतम की अनन्य कृपा का ही सहारा होता है कि अब उनकी जो इच्छा हों वह करें।

दाहो दसे दिसों दिस सबे धखे, लाल झालां चले इंड न झलाए।
फोड़ आकास फिरे सिर सिखरों, ए फलंग उलंघ संग खसम मिलाए।।४।।

मेरी आत्मा! दसों दिशाओं में तृष्णा की भयंकर ज्वालायें धधक रही हैं जिसमें सभी प्राणी जल रहे हैं। ब्रह्माण्ड में उसकी लाल लपटें इतनी अधिक उठ रही, है कि वे पकड़ में नहीं आ रही हैं। स्वर्ग–बैकुण्ठ आदि लोकों से होते हुए तू निराकार मण्डल को पार कर और इस क्षर ब्रह्माण्ड से शीघ्रतापूर्वक (छलांग लगाकर) परे हो जा ऐसा करके ही तू अपने प्राणवल्लभ अक्षरातीत से मिलन कर सकेगी।

घाट अवघाट सिलपाट अति सलवली, तहां हाथ ना टिके पपील पाए।
वाओ वाए बढ़े आग फैलाए चढ़े, जले पर अनलें ना चले उड़ाए।।५।।

इस भवसागर के किनारे ज्ञान के बड़े–बड़े पत्थरों से घाट बने हुए हैं जिन पर संशय की काई के उग जाने से इतनी अधिक चिकनाहट हो गई है कि उस पर चींटी के भी पैर (हाथ) टिक नहीं पा रहे हैं। ऐसी अवस्था में उस पर चल पाना तो बहुत ही कठिन है। आलस्य और प्रमाद रूपी हवा के झोंकों से अग्नि की लपटे (अशान्ति) और अधिक तेज होती जा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप आत्मा रूपी पक्षी के दोनों पंख अटूट विश्वास तथा प्रेम (ईमान एवं इश्क) जल जाते हैं। फलतः परमधाम की ओर उड़ान भरना असम्भव सा हो जाता है।

प्रणाम जी

ज्ञानपीठ,
सरसावा

समाधान

हर समस्या का समाधान होता है।शायद एक नहीं अनेक समाधान होते हैं। दिक्कत यह है कि या तो हम समस्याओं का सामना करने से ही कतराते हैं या फिर सामना करते हैं तो पूरे मनोंयोग से नहीं। किसी भी काम को मनोयोगपूर्वक करने में समय लगता है, लेकिन हम अन्य बातों में इतना उलझे रहते हैं कि कभी समस्या को पूरा समय नहीं दे पाते। हम खंड़–खंड़ में अपना समय देते हैं। फलतः हमें प्रभावकारी समाधान नहीं मिल पाता। हममें से अधिकांश अपने जीवन की बौद्धिक, सामाजिक या आध्यात्मिक समस्याओं को कभी पूरा समय नहीं देते। लिहाजा वे बनी ही रहती हैं। समस्याएं कभी अपने–आप तिरोहित नहीं होतीं। उन्हें हल करने में समय लगता है।

समयाभाव का बहाना बनाकर हम अप्रिय समस्याओं की उपेक्षा करना चाहते हैं। यह उपेक्षा समस्याओं को दूर कर देती तो फिर चिंता की कोई बात नहीं, पर ऐसा होता नहीं। समस्या ज्यों–की–त्यों बनी रहती है और समय–असमय हमें परेशान कर जाती है। जीवन की समस्याओं के समाधान का एक ही तरीका है और वह यह है कि उन्हें सुलझाया जाए। इसके लिए हमें पहले किसी भी समस्या के प्रति अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करनी पड़ेगी, पर हममें से अधिकांश लोग अपनी समस्या से कतराना चाहते हैं। हम अपनी हर समस्या के लिए किसी अन्य व्यक्ति को या सामाजिक परिस्थितियों को दोषी ठहराते हैं। और फिर कुछ नहीं हुआ तो अपनी हर समस्या को भाग्य का खेल या ग्रहों का दोष ठहरा देते हैं। यह सचमुच बेहद हास्यास्पद है।

समस्याओं से निपटने का एक ही तरीका है सत्य के प्रति पूर्ण समर्पण। इस संसार की वास्तविकता को हम जितनी कम स्पष्टता से देखेंगे, उतना ही हमारे मन में भ्रम और गलत दृष्टि अपना पैर पसारेगी। इससे हम सही निर्णय करने या सही कदम उठाने में कम समर्थ होते हैं। यदि नक्शा बिल्कुल सही है तो हम जान जाएंगे कि हम कहां हैं। यदि हमने कहीं जाने का निश्चय कर लिया है तो हम सही दिशा की ओर बढ़ भी सकते हैं। यदि हमारा नक्शा ही गलत है तो फिर भटकना ही हमारी नियति बन जाता है। हम अपनी जिंदगी के नक्शे के साथ पैदा नहीं होते।

प्रणाम जी

धर्म

तीसरा गुण - दम

गंताक से आगे मनुस्मृति के अनुसार धर्म का तीसरा लक्षण दमः है

.दमः– दम का साधारण अर्थ इन्द्रिय–दमन समझा जाता है। परन्तु मनु जी के अनुसार इन्द्रियनिग्रह अलग है। यहाँ दम का अर्थ मन का निग्रह करना समझा जाता है। मन ही एक ऐसा परोक्ष पदार्थ है। जो सतत जगत के आस्तित्व को सिद्ध करता है माया से मोहित मनुष्य को विषयों के प्रबल बन्धन में बांधता है।''मन एव मनुष्याणां बन्धमोक्षयो! ''स्वयं अनात्मा और जड़ होने पर भी बन्धन और मोक्ष इसके आधीन हैं। मन पर विजय प्राप्त किये बिना जगत का कोई भी कार्य सुचारू रूप से सम्पादित नही होता। जो मन को जीत लेता है, वह अनायास ही जगत को जीत लेता है।

मन के हारे हारिए, मन के जीते जीत।
मन ही देवे सत साहेबी, मन ही करे फजीत।

जिस प्रकार वाहन (गाड़ी) को चलावने वाला ड्राईवर (चालक) होता है उसी प्रकार शरीर और ईन्द्रियों का चालक मन होता है।

मन हमारा चचंल और हठीला है। अनन्त युगों से निरन्तर विषयों में रमण करने से इसका स्वरूप विषयाकार हो गया है। इसको निग्रह करने के दो उपाय शास्त्रों में बताये गये हैं। एक अभ्यास,दूसरा बैराग्य–अभ्यास बैराग्याभ्यां तन्निरोधः योगदर्शन 12 समाधि। अर्जुन श्रीकृष्ण योगिराज से पूछते हैं– हे कृष्ण यह मन बड़ा ही चचंल है, मनन करने वाला बड़ा दृढ़ व बलवान है। इसलिए इसको वश में करना, वायु की तरह कठिन मानता हूँ। श्री कृष्ण कहते हैं कि अभ्यासेन तू कौन्तेय बैराग्येण च ग्रहेत। हे अर्जुन अभ्यास और बैराग्य से इसका निरोध होता है। अभ्यास का अर्थ है कि हम इन्द्रियों को घोर अभ्यास के द्वारा, विषयों के स्वाद से हटाकर, परमात्मा के चिंतन, मनन और आनन्द में लगायें। मन से मनन, चित्त से चिन्तन, बुद्धि से

विवेचना द्वारा प्रियतम के प्रेम में खो जायें।

मन के अधीन ही मानव की इन्द्रियां हैं, जो समस्त दुःखो का कारण है। लौकिक दुःख (शारीरिक, दैविक, भौतिक) तीनो तापों का मूल मन और इन्द्रियां ही हैं।

''इन इन्द्रियों की मैं क्या कहूं ये तो अवगुण की है काया। इनसे देखूं क्यों साहिब, एही भई आड़ी माया''–प्रकाश

प्रत्येक इन्द्रिय मानव को अपनी ओर खींचती है। कोई धैर्यशाली ही मानव होगा जो विषयों की तरफ नहीं भ़टकता वरना अपने मन पर काबू करके वर्हिमुखी न होकर अर्न्तमुखी होता है।

प्राणाधार सुन्दर साथ जी व धर्म पथ पर गमन करने वाले धर्मवृन्द–इन्द्रियों पर विजय पाये बिना, उस परमानन्द को खोजना, रेगिस्तान में जल को ढूंढने के समान बेमानी है। क्योंकि बिना अभ्यास और वैराग्य के बिना परमात्मा का शाश्वत प्रेम और आनन्द नहीं मिलने वाला। जैसे अमावस्या की रात्री में टिमटिमाते हुऐ दियों के समान शास्त्रों के ज्ञान की रोशनी के सहारे–इन जीवों की क्या दशा होगी।

(मनं) इन्द्रियों रूपी नदी का प्रबल प्रवाह अविवेक और विषय रूपी पथ पर बहता हुआ निरन्तर संसार सागर में पड़ रहा है। इस प्रवाह को इस मार्ग से हटाकर परमात्म मुखी करने के लिए सतत अभ्यास और वैराग्य के उपाय करने चाहिए। वेग से बहती नदी के जल को बांध बना कर रोका जासकता है। परन्तु अत्यधिक वेग (प्रवाह) तो बांध को तोड़कर निकल जाता है और भयंकर बाढ़ में परिणित हो जाता है। विवेकी इंजीनियर इस जल को विभाजित करके नहरों तालाबों और राजवाहों में डालकर छोटी –2 कूलों द्वारा खेतों तक पहुचाते हैं। जलप्रवाह विवेक पूर्ण दशा में जाकर हानि की जगह लाभदायक सिद्ध होता है।

इसी प्रकार बार्हिमुखी मन जो इन्द्रियों का राजा है उसे अर्न्तमुखी करने के लिए एक विवेकमान सतमार्ग की आवश्यकता होती है। वह भटके मानव को सदउपदेश सद शिक्षा,चर्चा,वाणी द्वारा उसे निरन्तर अभ्यास कराकर अर्न्तमुखी करता है। और संसार से वैराग्य रूपी बांध बांधकर मन–चित की वृतियों को परमात्मा

के चिन्तन–मनन में लगाता है।

इस प्रकार सतत प्रयत्न से परमात्मा के परमधाम व अपनी आत्मा की पहचान होती है। इससे समाज, सस्था, राष्ट्र, परिवार की भी भलाई होती है–उपनिषद में कहा गया है–

परांचि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूरू तस्मात्पराङ पश्पति काश्चिदीरः प्रत्यगात्मानयैक्षदावृत चक्षुर मुर मृतत्वतमिच्छनान्तरात्मन् कठोपनिषद – 8/2

परमात्मा ने पांच इन्द्रियां बनाई हैं। कोई धैर्यशाली पुरूष ही इन विषयों की तरफ नहीं भटकता। अमृत की इच्छा करने वाला कोई धीर पुरूष ही अपने अन्दर उस शाश्वत सत्य को पाना चाहता है, वह बाहर नही भागता विषयों के पीछे। जिसने इनका दमन कर लिया है कि –ये सब क्षणिक हैं, वही धैर्यशाली है। नियत्रण– शाली व्यक्ति ही तो सच में धार्मिक एवं विवेकी हैं। (असंयम) असंयतात्मना योगो दुष्पाप इति में मतिः

वश्यात्मना तु यतता शम्योडवाप्तमुपायताः गीता 6/36

जिसका मन वश में नही है। उसके लिए परमात्मा की प्राप्ति रूप योग प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। यह मेरा मत है। मन को वश में करने वाला व्यक्ति साधन द्वारा योग को प्राप्त कर लेता है। प्राणाधार साथ जी हमे अपनी वर्हिमुखी इन्द्रियों को (दमन) शमन करके अपने मन को धनी के चरणों मे लगाना है। केवल एक विषय का सेवन करने वाले पतंगा, हाथी, हिरण, भौरां और मछली मृत्यु के मुख मे चले जाते हैं तो प्रमादी मनुष्य द्वारा पांचो विषयों का सेवन करने से क्या स्थिति घटित होगी।

हमारे अन्दर एक विषय भी प्रभावी हो गया तो समझिये परमात्मा हमसे लाखों कोसों दूर है। इसलिए विवेक शील मानव को चाहिए कि वह अपने वार्हिमुखी मन और इन्द्रियो को अपने वश में करके अर्न्तमुखी बने। बह्मज्ञान रस का रसास्वादन करें। इस विषय में श्री मुखवाणी कहती है कि–

तुम सयाने मेरे साथ जी, जिन रहो बिखे रस लाग।

पाँव पकड़ कहे इन्द्रावति, उठ खडे हो जाग।। प्र0 हि0 17/

श्री इन्द्रावती जी कहती हैं कि–मेरे प्राणाधार सुन्दरसाथ जी कि आप प्रबुद्ध र्निविकार सुजान हो, इस तिलस्मी माया के झूठे रस में मत फंसो, मैं आपके चरण कमलों को पकड़, कह रही हूँ , कि तुम इन इन्द्रियों की तृष्णा को छोडकर, अपने प्राण वल्लभ को अपने हृदय कमल में बसाओ, और सुप्तावस्था को छोड़कर अपनी आत्म जागृत करो। आगे कहती हैं,

इन इन्द्रियों कि क्या मै कहूँ , ये तो अवगुण ही काया।

इनसे देखूँ क्यों साहिब, एही भई आड़ी माया। कि 89/8

प्यारे साथ जब तक हमारी इन्द्रियाँ हमारे वश में पूर्णतया नहीं होंगी, तब तक प्रियतम की छवि भी हमारे ध्यानावस्था में नहीं आयेगी।

प्राण–प्रियतम के प्यारे साथ जी– इन्द्रियों का शमन ही दम है। ये इन्द्रियां मन के चलाने से चलती हैं। पारब्रह्म की कृपा दृष्टि और अभ्यास द्वारा ये सभंव है। नहीं तो कितने पूजा, पाठ, जप, सिमरण करो कुछ भी फायदा होने वाला नहीं है।

कोट करो बन्दगी, बाहेर हो निरमल।
तो लो ना पिव पाइये, जो लो ना साधे दिल।।

हमारे गुण, अगं, इन्द्रियाँ जब तक वश में नहीं होंगे तो साधना बेकार है।

पाक हुआ दिल जिनका, तिनका वजूद जामा पाक सब।
हिरस हवसब इन्द्रियाँ, तिन नहिं नापाकी कब।। सनंध।।

श्री महामति जी कहती हैं जिन सुन्दर साथ का दिल पवित्र हो गया तो उनकी समस्त इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित, अहं सब पवित्र हो गये। यह पवित्रता समस्त शरीर की अन्तर, और बाहेर दोनो पवित्र उसकी कथनी और करनी भी पवित्र हो जायेगी। वह तो मन, वचन, कर्म से पवित्रता, पावनता, सोम्येता, सुघड़ता का प्रतीक हो जायेगा और धनी के प्रेम का पात्र बन जायेगा।

धर्म पथ के अनुगामी पवित्रात्माओं ये तीसरा धर्म का लक्षण दम है। जो पवित्रता मांगता है। संयम चाहता है। मन का शमन चाहता है।

प्रणाम जी

लेखिका
राजबाला बेहट

मदद

मदद की जरूरत है तो मदद मांगिए। अक्सर समाधान किसी अन्य व्यक्ति से मदद मांगने में छुपा होता है। क्या आपको म्दद की जरूरत है?तो फिर इसे मांग लें। लोगों को यह बताने में न झिझकें कि आपको मदद की जरूरत है। एक से अधिक' असंभव' वैवाहिक समस्याएं रचनात्मक समाधान की ओर बढ़ी हैं,। जब पति या पत्नी ने कहा है, ' प्रिय, आपको मेरी मदद करनी होगी, तांकि मैं अपनी नकारात्मक भावनाएं दूर कर सकूं, जो हमारे विवाह को लेकर मेरे सामने हैं। मेरे मन में ये नकारात्मक भावनाएं नहीं होनी चाहिए। मैं जानती हूं कि वे गलत हैं। वे मुझे चोट पहुंचाती हैं और हम दोनों का जीवन बर्बाद कर रही हैं। कृपया मेरी मदद करो।' क्या आपको मदद की जरूरत है?क्या आप हताश हैं?क्या उत्साह कम हो गया है?क्या आप जीवन से भागना चाहते हैं? तो मदद मांगिए, सहायता खोजिए। थोड़ी ही दूर पर आशा आपका इंतजार कर रही है। चाहे आप इसके अलावा कुछ भी करें, परंतु संप्रेक्षण अवश्य करें खुद को उस मदद से वंचित न रखें, जो आपको मिल सकती है। घमंडी लोगों में पीछे हटने की प्रवृत्ति होती है। अतः उस मुक्त आशा मदद को अस्वीकार न करें, जो उपलब्ध है। सकारात्मक चिंतन के संदेश सुनना शुरू करें। प्रार्थना का सहारा लें। ईश्वर से सवाल करें और उसके जवाब सुनें। जब आप उससे सलाह मांगे, तो पूरी ईमानदारी से सुनें। क्या आपको बुद्धि की जरूरत है?मार्गदर्शन की?तो इसे लें, परंतु अगर आप उपलब्ध मदद लेने से खुद को वंचित रखते हैं, तो अंततः आप खुद को हराते हैं। संयुक्त चिंतन को आजमाएं। किसी क्लब या किसी सामुदायिक समूह में शामिल हों ताकि आप अपने सपनों, आशाओं और जरूरतों के बारे में दूसरों को बता सकें। आपको यह देखकर हैरानी होगी कि आपको मदद तो मिलेगी ही और आपकी समस्या भी सुलझ जाएगी।

प्रणाम जी

सच्चा जीवन

`कहते हैं कि जीवन का आरंभ अपने रोने, जबकि अंत दूसरों के रोने से होता है और इस आरंभ और अंत के बीच का समय भरपूर हास्य और प्रेम से भरा होना चाहिए। ऐसा इसलिए, क्योंकि यही सच्चा जीवन है। दरअसल जीवन एक लंबी यात्रा के समान है, इसलिए इसमें अवरोध आने स्वभाविक हैं, लेकिन ऐसे में कुछ लोग बुरी तरह घबरा जाते हैं और प्रेम–हास्य में भरा जीवन उन्हें दुखदायी लगने लगता है। वे ईश्वर को भला – बुरा कहने लगते हैं, लेकिन जब वे संकट से उबर जाते हैं तब उन्हें जीवन का असली मर्म समझ में आता है। एक बार रामकृष्ण परमहंस के गले में नासूर हो गया तो उनके शिष्य बोले कि यदि वे अपने मन को एकाग्र करके यह कहें कि 'रोग चला जा' तो उनका रोग मिट जाएगा। इस पर रामकृष्ण परमहंस बोले, जो हृदय मुझे मां का स्मरण करने के लिए मिला है उसे मैं सांसारिक काम में क्यों लगाऊं। उनके शिष्यों ने उनसे आग्रह किया कि आप मां को ही कह दें कि वह आपको रोग मुक्त करें। रामकृष्ण परमहंस मुस्कुराते हुए बोले कि मैं ऐसी मूर्खता क्यों करूं। मां तो दयामयी, सर्वज्ञ और सर्व–समर्थ हैं। उन्हें मेरे कल्याण के लिए जो उचित लगेगा, वे वही करेंगी। मैं उनके कार्य में बाधा क्यों डालूं। शिष्यों के पास उनके इस तर्क का कोई उत्तर नहीं था।

दरअसल हमें जीवन में छोटी–छोटी बातों पर हतोत्सहित होने के बजाय अपने और परमात्मा पर विश्वास करना सीखना चाहिए। कभी किसी बच्चे को डराने का विनोद करने के लिए हम अपना चेहरा डरावना बना लेते हैं, उसी तरह ईश्वर भी हमारे साथ विनोद करता है। इसका मतलब यह है कि बच्चे भयावह परिस्थितियों का मुकाबला कर सकें और उनकी डरने की आदत छूट जाए। इसलिए हमें भी जीवन की विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करना चाहिए। हम सभी समय–समय पर द्वेष, क्रोध, भय, ईर्ष्या के कारण दुखी होते हैं। इस वजह से हम औरों को भी दुखी बनाते हैं और इस तरह हमारे आस पास का का पूरा माहौल नकारात्मक हो जाता है। इसके बाद हम जीवन से निराश होने लगते हैं।

लेखक
विद्यार्थी सुभाष ज्ञानपीठ

रस मगन भई सो क्या गावे

रस मगन होना अर्थात अपने प्रियतम के प्रेम में मगन हो जाना, उनके आनन्द में डूब जाना। रस आनन्द को ही कहते हैं। प्रियतम प्रेम के आनन्द के सागर हैं। आत्मायें उसी प्रेम के सागर की लहरें हैं। समुन्द्र में जल होता है। तो उनकी लहरें भी उसी जल से ही बनती हैं। समुन्द्र और लहरो में कोई अन्तर नहीं होता है। उसी तरह आत्मायें भी प्रियतम की अंगी हैं। इसीलिए उन्हें अंग–अंगी कहा गया है। परआत्म जो राजजी के चरणों में बैठी है जिसकी नजर आत्म जो माया के खेल में आई है। जो यहाँ के जीवों पर बैठकर माया का खेल देख रही है, पहचान होने पर वह भी प्रेम मे डूब जाती है। महामति जी की आत्मा भी जब प्रेम में डूब गई तो वह अपनी आत्म से कह रही है कि तूं कैसे गा सकती है अर्थात कैसे वर्णन कर सकती है। जो प्रेम में डूब गई वह अपने प्रेम को शब्दों में वर्णन कैसे कर सकती है। धनी का प्रेम तो शब्दातीत है उसे शब्दो में वर्णन करना सम्भव नहीं है वह सीधे शब्दों में कैसे वर्णन करे कि मेरे धनी का प्रेम कैसा है। वह तो जब आनन्द के सागर में डूब जाती है तो क्या बताएगी कि मैं धनी से कैसे प्रेम करती हूँ। महामति जी ने जब वर्णन किया तो धनी की मैं को लेकर किया। उन्होंने कहा कि इसमें मेरी मैं नहीं है। मेरी मैं वहाँ के प्रेम को यहाँ कैसे बता सकती है मेरे धनी के अंग अंग में कैसे इश्क समाया हुआ है। एक नमक का ढेला समुन्द्र की गहराई को कैसे माप सकता है वह तो उसी समुन्द्र से बना है। परन्तु महामति जी को शोभा स्वयं धामधनी ने दी है। तभी तो सिनगार ग्रंथ में कहा है।

वरनन करो रे रूह जी, हकें तुम सिर दिया भार।

अर्स किया अपने दिल को, माहें बैठाओ

कर सिनगार।।

महामति जी अपनी रुह को कहते हैं कि हे मेरी आत्मा! अब तुम श्री राजजी के नख से शिख तक की शोभा का वर्णन करो, धामधनी ने वर्णन करने का उत्तरदायित्व तुम्हें सौंपा है उन्होंने तुम्हारे दिल को अपना धाम बनाया है। जब स्वयं ही प्रियतम धाम हृदय में विराजमान हो जाते हैं उसे धाम कहलाने की शोभा प्राप्त हो जाती है। यह शोभा ब्रह्मसृष्टियों को ही मिलती है जो आज दिन तक किसी को भी नहीं मिली है। अधिकतर ज्ञानी जनों ने परब्रह्म का स्वरूप निराकार कहा। वह वर्णन करने में आदि नारायण तक सीमित रहे। निराकार को पार करने वाली पंचवासनाओं ने चतुष्पाद विभूतियों का ही वर्णन किया है। मुहम्मद साहिब ने भी परब्रह्म का दीदार अवश्य किया पर वर्णन नहीं कर पाये। धाम धनी महामति जी से वर्णन करा रहे हैं वह सुन्दरसाथ को भी बता रहे हैं कि, एसी आत्मायें जिनका दिल अर्श हो जाता है उनकी बुद्धि,मन,चित्त, सभी संसार से उचट जाते हैं, अर्थात उनकी बुद्धि संसारिक बुद्धि नहीं रहती। उनके अन्दर जागृत एवं निजबुद्धि प्रवेश कर जाती है। मन संसार का मनन छोड़ देता है मन इन्द्रियों का राजा है। उसका मनन सिर्फ धनी का एवं पच्चीस पक्षों का होता है।

उसके चित में माया के संस्कार विरह की अग्नि में भस्म हो जाते हैं। उसके मुख से कुछ निकलता भी है तो रहस्यमयी बातें ही निकलती है।

वह सीधे शब्दो में कुछ भी नहीं कह पाता। सुनने वाला सोच भी नहीं पाता कि, इन्होंने यह बात कैसे कह दी। तभी तो कहा है कि परमहंसो के मुख से जो शब्द निकलते हैं वह अटपटे तो लगते हैं पर वह पत्थर की लकीर होते हैं।

प्रियतम के प्रेम में डूबी रहने वाली आत्मा के जो नेत्र हैं वह मायावी दृश्यों को देखना पसन्द नहीं करते। जो परमधाम के सुन्दर दृश्यों को देख लेगी वह तो कहेगी मैं दुनियां के झूठे नजारों को क्या करूं मुझे तो अपनी वह नजर दे दो जिससे मैं

तुम्हें और अपने घर को देख सकूं मैं घूमूं तो 25 पक्षो में घूमूं। मेरा पुखराजी पहाड़ जो एक ही पुखराज का बना हुआ है जिसकी एक ही झलक देखने के बाद संसार आग की झालों के समान लगेगा। माणिक पहाड़ के झूले जब वह देख लेगी तो क्या देखेगी झूठी दुनियां को। जिसके कानों में प्रियतम की भीनी रसना सुनाई देगी वह लौकिक बातों को क्यों सुनेगी। उसकी इच्छा ही नहीं करेगी कि वह दुनियावी बातें करे। तभी तो वाणी में कहा है– मोमिन होते दुनी के, तो करते दुनी की बात। जिहवा को स्वादिष्ट व्यंजनो में रस नहीं आता।

उसे मालूम है यह जिहवा जो आजतक संतुष्ट नहीं हुई है न कभी होने वाली है तो मैं क्यों इसके पीछे लंगू। तभी तो जिसने भी आज तक अपनी जिहवा को जीता है वही सफलता को प्राप्त कर शिखर तक पहुंचा है। क्योंकि उसकी अवस्था त्रिगुणातीत हो गई होती है। सत, ,रज व तम से परे हो जाती है। वह दोनों पक्षों प्रवृति मार्ग तथा निवृति मार्ग से भिन्न राजा जनक वाली राह पर चलती है। वेदान्त के योग वशिष्ठ नामक ग्रंथ में अध्यात्म की सात भूमिकाओं का वर्णन किया गया। पांचवी कैवल्य की अवस्था विदेहावस्था है छठी और सातमी का वर्णन हो नहीं सकता। यह वर्णन परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ही कर सकती है। वह ही आगे का अनुभव करती है। 1. शुमेच्छा जब विवेक जागता है तो उसे संसार से वैराग्य हो जाता है और वह मोक्ष की कामना करता है। 2. विचारणाः– वह शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्रों का विचार भी करता है। 3. तनुमानसाः– तब ऐसी स्थिति आती है तो ध्यान का आश्रय लेकर लौकिक सुखों की आसक्ति का त्याग कर देता है। 4. सत्वापतिः– बुद्धि के पूर्णतया शुद्ध होने पर आत्म स्वरूप में स्थित हो जाता है। 5. असंसकितः– चित के सभी संस्कारों से रहित होकर अपने निजस्वरूप में समाधिस्थ होता है। 6 पदार्थ भावनाः– ब्राह्मी अवस्था का अनुभव होना। 7 तुर्यग– संस्कार से पूर्णतया अलग उस अद्वैत स्वरूप ब्रह्म से एकरूपता भूमिकाओं को पार करने वाला

कैवल्य की विदेहावस्था को प्राप्त होता है। जीव अपनी शुद्ध अवस्था में स्थित तो हो जाता है पर उसे अपने अस्तित्व का भान रहता है। पंच भौतिक तन का आभास नहीं होता। छठी और सातवीं में शरीर और ब्रह्माण्ड का भान नहीं रहता। यह हंस आँर परमहंस की अवस्था है। उसकी सभी इन्द्रियाँ सांसारिक विषयों के सुखों के सेवन से कहीं दूर होती है उसे उनमें जरा भी रूचि नहीं रहती। वह इन सुखों की कल्पना भी नहीं करती। उसका स्वभाव बदल जाता है। उसका दिल कोमल हो जाता है। वह सपने में भी किसी को दुःख नहीं देना चाहती। उसकी अवस्था बदल जाती है वह हर पल अपने प्रियतम के प्रेम में रंग जाती है। वह जागृत अवस्था में भी प्रियतम में खोई रहती है''। बैठते–उठते, चलते, सुपन सोवत जागृत। खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत''। वह आत्मा सभी अवस्थाओं में धनी के प्रेम में खोई रहती है। उसे अपने शरीर की भी सुधि नहीं रहती। मोह अहंकार से उसका नाता टूट जाता है, यहां तक कि उसके नेत्रों से नींद भी समाप्त हो जाती है। उसे प्रियतम के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं देता। देखने के लिए उसका शरीर संसार में होता है।

''लगी वाली ओर कछु न देखे पिंड ब्रह्मांड वाको है री नाहीं। ओ खेलत प्रेमे पार पियासों देखन को तन सागर माहीं'' ।।

प्रियतम के प्रेम में डूबने वाली आत्मा की स्थिति ही ऐसी होती है कि वह प्रियतम के प्रेम में इतनी डूब जाती है कि बैंकुण्ठ के सुख, निराकार मंडल से परे बेहद की अनुभूति को भी ठोकर मार देती है, जो ऐसे प्रियतम को दिल में बसा लेती है। उसकी रसानुभूति में डूब जाती है, वह आनन्द के ऐसे शब्दों को कैसे गा कर बता सकती है''।

रस मगन भई सो क्या गावे,
बिचली बुध, मन, चित, मनुआ,
ताए सबद सीधा मुख क्यों आवे''।।

प्रणाम जी

किरण बाला
ज्ञानपीठ

जागरूक

एक चोर महान बौद्ध गुरू नागार्जुन के आकर्षण में खिंचा चला आया। उसने ऐसा गरिमामय व्यक्तित्व नहीं देखा था। उसने नागार्जुन से पूछा, क्या मेरे उद्धार की भी कोई संभावना है''। फिर जल्दी से बोला, एक बात स्पष्ट कर दूं। मैं चोर हूँ और चोरी छोड़ नहीं सकता, इसलिए इसे छोडने के लिए मत कहना'। गुरू बोले,'तुम्हारे चोर होने की कौन बात कर रहा है'। चोर ने कहा कि वह जिस भी साधु –महात्मा के यहाँ गया उसने चोरी छोड़ने को कहा। नागार्जुन ने हंसकर कहा' तुम जरूर चोरों के यहां गए होगे, वरना उन्हें इसकी क्यों चिन्ता होनी चाहिए। अब जाओ और जो चाहे करो। सेंध मारो, चोरी करो, चीजें उठा लाओ। शर्त यही है कि जो भी करो पूरी जागरूकता से करना। तीन हफ्ते बाद चोर लौटा और नागार्जुन से कहने लगा, आपने मुझे फंसा दिया। यदि मैं जागरूक रहता हूं तो चोरी नहीं कर पाता और चोरी में जागरूकता चाहिए या नहीं?चोर ने कहा, नहीं नहीं मैने जागरूकता का स्वाद चख लिया है। इसे छोड़ नहीं सकता। कल मैं राजमहल में घुसने में कामयाब हो गया। जागरूकता छोड़ता तो खजाना नजर आता। लेकिन मैंने फैंसला कर लिया है कि असली खजाना तो यह जागरूकता है। हीरे–जवाहरात के लिए इसे नहीं छोड़ सकता। उनका इतना मूल्य नहीं है। वह नागार्जुन को समर्पित हो गया और कालान्तर में बुद्धत्व को प्राप्त हुआ।

प्रणाम जी

लेखक

विद्यार्थी पुकार

ज्ञानपीठ

सदकर्तव्य

बड़ी मुश्किल से मानव जीवन मिलता है। इसलिए ऐसे जीवन को व्यर्थ नहीं करना चाहिए, बल्कि इस जीवन में जितने सद्कर्त्तव्य किए जाएं, उतना ही अच्छा है। पुरूषार्थ किए बगैर भाग्य का निर्माण नहीं हो सकता। मौजूदा संदर्भ में एक सवाल यह उठता है कि कर्म का चयन कैसे किया जाए कि किस व्यक्ति को क्या कर्म करने हैं?विद्वान लोग कहते हैं कि अपनी जिम्मेदारियों के अनुसार हर व्यक्ति कें कर्तव्य तय हैं। शिक्षक को अपने छात्रों के प्रति, नेता को राष्ट्र के प्रति, पति को अपने बच्चों और पत्नी के प्रति, दुकानदार को अपने ग्राहक के प्रति ईमानदार व समर्पित होना चाहिए। सिकंदर और पोरस में युद्ध चल रहा था। सिकंदर को सूचना मिली कि शत्रु देश का एक साधु अपनी जड़ी–बूटियों से उसके घायल सैनिकों का उपचार कर रहा है। सिकन्दर ने उस साधु से मुलाकात की और पूछा कि तुम शत्रुओं की सेवा क्यों कर रहे हो?साधु ने जमीन से एक मरी हुई चींटी उठाई और उससे पूछा–क्या तुम इसे जीवित कर सकते हो?तब सिकंदर ने इसका उत्तर 'नही' दिया, तो उस साधु ने कहा–जब तुम एक चींटी तक को प्राण नहीं दे सकते तो अनगिनत मनुष्यों के प्राण लेने का क्या अधिकार है। शास्त्रों में लिखा है कि आपके हर कर्म का फल इसी जीवन में मिलता है। यानि बबूल के पेड़ बोने पर आम की लालसा नहीं रखनी चाहिए।

सदकर्तव्य और कुछ नहीं, बल्कि मानव धर्म का पालन करना है। एक समय की बात है कि महर्षि दयानंद जी किसी स्थान पर विराजमान थे। उन्होंने देखा कि एक मजदूर सामान से लदे एक ठेले को चढाई पर ले जा रहा है। भार अधिक होने के कारण मजदूर प्रयास करने के बावजूद ठेले को आगे नहीं बढ़ा पा रहा। दयानन्द जी ठेले को आगे बढाने में उस मजदूर की मदद करने लगे। उन्हें सफलता मिल गई। लेकिन यह नजारा देख कर सेठ हाथ जोड़ कर दयानंद के सामने खड़ा हो गया। तब दयानंद ने कहा कि यह तो उनका कर्तव्य व धर्म था। हर किसी को अपने कर्म के

प्रति सचेत रहना चाहिए। हम जैसा कर्म करेंगे वैसा ही फल हमें मिलेगा। अगर हमारे कर्म अच्छे होंगे तो इससे न केवल हमारा अपना व्यक्तित्व बेहतर होगा बल्कि हमारे आस–पास का वातावरण भी सुधरेगा। अक्सर हम अपने स्वार्थ में सदकर्मो की अनदेखी कर देते हैं।

प्रणाम जी

धीरता

विपत्ति के समय भी अपने मन को स्थिर रखना धैर्य कहलाता है। मन चंचल है, अतः विपति के समय वह और अधिक चंचल हो उठता है। संसार में मनुष्य को प्रायः सभी कार्यों में विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। जो मनुष्य कोई भी बड़ा काम करना चाहते हैं, उनमें धैर्य–गुण का होना अनिवार्य है।धैर्य ही वह गुण है, जो विपत्ति में मनुष्य को मार्ग दिखाता है। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं, उनमें धैर्य असाधारण कोटि का था। धैर्यवान मनुष्य विपत्ति में चंचल नहीं होता है और शान्तिपूर्वक अपने कर्तव्य का निश्चय करता है। बड़े से बड़े विघ्न भी धीर मनुष्य के सामने नष्ट हो जाते हैं। जीवन की सफलता के लिए धैर्य को धारण करना अति आवश्यक है।

विद्यार्थी–जीवन

प्राचीन शास्त्रों के अनुसार जीवन को चार भागों में बाँटा गया है–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम है। यही विद्यार्थी जीवन का काल है। विद्यार्थी जीवन, जीवन की आधार शिला है। मनुष्य अपने भावी जीवन के लिए इस काल में ही ज्ञान, आचार–विचार, शील, संयम, सत्य तथा अन्य सभी गुणों का संग्रह करता है। यही समय है जब विद्यार्थी अपनी आध्यात्मिक, नैतिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास करता है। विद्यार्थी अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का जितनी सावधानी और तत्परता के साथ उपयोग करेगा, उतना ही वह महान पुरूष होगा। विद्या और सदगुण के संग्रहण का यही शुभ अवसर है।

अनुशासन–पालन

निर्धारित नियमों के पालन और अपने से बड़ों की आज्ञा के पालन को अनुशासन पालन कहते हैं। अनुशासन पालन जीवन की सफलता की कुंजी है। अनुशासन पालन का अभ्यास बाल्यकाल से ही करना चाहिए। अनुशासन या नियन्त्रण के पालन से ही मनुष्य का जीवन उच्च होता है। जो देश औ र समाज अनुशासन का पालन करता है, वही उन्नति को प्राप्त करता है। घर, विद्यालय और समाज में सर्वत्र ही अनुशासन पालन की आवश्यकता है। जहाँ अनुशासन नहीं है, वहाँ अव्यवस्था का निवास होता है। अतः देश और समाज की उन्नति के लिए अनुशासन पालन अनिवार्य है।

प्रणाम जी

प्रेम के चाँद के अनमोल वचन

१. दिन और रात्रि की ही भांति सुख और दुःख का चक्र भी बदलता रहता है। सागर के किनारे जिस प्रकार दृढ़ता पूर्वक खड़े रहकर ही अपनी सुरक्षा की जाती है उसी प्रकार मायावी कष्टों से अपनी रक्षा के लिये धैर्य ही सबसे बड़ा शस्त्र है।

२. जंगल में लगी हुई अग्नि हवा के झोंकों से और प्रचण्ड होती जाती है। माया के कष्ट भी विपरीत परिस्थितियों में और अधिक बढते ही जाते हैं।

३. क्रूर काल के पंजों ने पिता का स्नेहमयी हाथ तो पहले ही छीन लिया था, मां का भी ममतामयी आंचल छीन लिया। यह विधाता की कैसी रचना है जिसमें माया के जीव तो विलासिता में डूबे रहते हैं जबकि सबको मुक्ति के स्वर्णिम पथ पर ले जाने वाले इस भावी परमहंस के पास अपनी मां के दाह–संस्कार के लिये भी पैसे नहीं है।

४. वस्तुतः कष्टों और संघर्षो की अग्नि में तपकर ही उस महान व्यक्तितत्व का निर्माण होता है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज का मार्गदर्शन होता है।

५. अनन्त सृष्टि में सर्वशक्तिमान परमात्मा के अनन्त चमत्कार हैं। मनुष्य के द्वारा छोटी छोटी सिद्धियों का चमत्कार दिखाना एक प्रकार से परमात्मा के प्रति प्रतिद्वन्दिता ही है जो आत्म साक्षात्कार से कोसों दूर कर देती है। सिद्धियों के मकड़ जाल में फंसा हुआ व्यक्ति सच्चिदानन्द परमात्मा के प्रेम और आनन्द से वंचित हो जाता है।

६. श्रद्धावान व्यक्ति ही वास्तविक ज्ञान का अधिकारी होता है। तमोगुण से ग्रसित, स्वार्थ और अहंकार के जाल में फंसा हुआ व्यक्ति कभी भी वास्तविक विद्वान नहीं बन सकता।

७. स्नेह और सम्मान करने वालों से स्नेह करना तो बहुत सरल है, किन्तु अपरिचित, विरोधी और घृणा करने वालों से भी स्नेह और शुभकामना की सुगन्ध फैलाने वाला करोड़ों में कोई एक होता है। वह ही विलक्षण व्यक्तित्व का स्वामी होता है।

८. त्रिगुणातीत पुरुषों की लीला को समझना बहुत कठिन है। यदि वे किसी को स्पर्श भी करते हैं तो उनमें मनोविकार का लेश भी नहीं रहता, इसके विपरीत, सामान्य मनुष्य भले ही किसी को न छुएं, किन्तु वे अपने को मनोविकार रुपी अग्नि से नहीं बचा पाते।

९. वर्तमान जगत अज्ञानता के अन्धकार में इतना अधिक डूबा हुआ है कि परमात्मा को तो भले ही न पहचानें, लेकिन चमत्कार दिखाने वाले पर सर्वस्व समर्पण कर देते हैं।

१०. सच्चा सन्यासी वही है, जो सोने और मिट्टी में समबुद्धि रखे। सन्यास लेकर भी यदि स्वर्ण का मोह सताता है तो यह अपराध सन्यास पर दाग लगाने वाला है।

११. सन्यासी समाज का सर्वोपरि व्यक्ति होता है। यदि वह ही धर्म की मर्यादा का हनन करे, तो समाज का पतन निश्चित है। जिस दिन भारत के लाखों सन्यासी स्वयं को धर्म की कसौटी पर खरा सिद्ध कर देंगे, उस दिन पृथ्वी पर आध्यात्मिकता का स्वर्गीय साम्राज्य स्थापित हो जायेगा।

१२. संसार में प्रत्येक रोग का निदान (इलाज) सम्भव है, किन्तु वहम का नहीं। इस रोग की चपेट में आने वाला कभी भी सुखी नहीं रहता। इसके

कारण ही न जाने कितनों पर वज्राघात होता है और कितने रिश्ते हमेशा के लिये टूट जाया करते हैं।

१३. रे मन ! तू सम्राटों के सम्राट, अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी उस सच्चिदानन्द परब्रह्म से क्यों नहीं मिलना चाहता, जिससे मिलने की इच्छा करने पर कोई रोकने वाला नहीं है और कोई यह भी कहने वाला नहीं है कि महाराज श्री अभी सो रहे हैं, इसलिये नहीं मिल सकते।

१४. जिस प्रकार छोटी नदी थोड़े से ही जल से भर जाया करती है, उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति थोड़े से ही धन को पाकर पागल हो जाता है और अपनी विनम्रता खो देता है। जैसे पर्वत पर वर्षा की बूंदों के आघात से कुछ भी दुष्प्रभाव नहीं होता वैसे ही दुष्टों के कटुवचनों का सन्तों के ऊपर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। वे निर्विकार भाव से सब सह लेते हैं।

१५. तृष्णाओं के जाल में कण्ठ तक डूबे हुए राजा–महाराजा परमहंसों और विद्वानों की गरिमा का आंकलन नहीं कर पाते। वे नहीं जानते कि ब्रह्ममुनि परमहंसों की चरण धूलि पाने के लिये देवराज इन्द्र भी तरसते हैं।

१६. अपने धन को परमात्मा का धन मानकर जो लोग मानवता के कल्याण में खर्च करते हैं, उनके धन में हमेशा वृद्धि होती रहती है, किन्तु, जो लोग उस धन को अपना मानकर स्वार्थ वश छिपाये रखते हैं या विषय भोगों में खर्च करते हैं, वह नष्ट हो जाता है।

१७. चाहे कोई गृहस्थ हो या विरक्त, धन का अनासक्त भाव से त्यागपूर्वक उपभोग होना चाहिए। धन के प्रति मोह होना यदि अज्ञानता है, तो वैराग्य के नाम पर पानी में फेंकना भी उचित नहीं। वस्तुतः किसी के कल्याण में उसे खर्च कर देना चाहिए।

१८. चिता मरे हुए मानव के स्थूल शरीर को ही जलाती है और चिन्ता जीवित अवस्था में ही घुट–घुट कर जलने के लिये विवश कर देती है। उसका सूक्ष्म तथा कारण शरीर भी इससे व्यथित होता है, किन्तु ईर्ष्या की अग्नि तो उसे बुरी तरह विषाक्त करके व्याकुल कर देती है, जिसमें उसके स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर भी दुःख की ज्वाला में जलने लगते हैं। यह अग्नि कई जन्मों तक उसे सन्ताप देती रहती है।

१९. महान व्यक्तित्व की परख क्षमाशीलता और सहनशीलता से ही होती है। सहनशीलता से बढ़कर दूसरा कोई अस्त्र नहीं होता। क्षुद्र व्यक्ति को अन्ततोगत्वा अपने दुष्कर्मो पर पश्चाताप के आंसू बहाने पड़ते हैं, जबकि सहनशील व्यक्ति हिमालय की तरह अपने मस्तक को ऊँचा किए रहता है।

२०. शारीरिक प्रेम नश्वर और अल्पकालिक होता है। आत्मिक प्रेम देश, काल और वर्ग की सीमाओं से परे अखण्ड तथा निर्विकार होता है। प्रेम का यही स्वरूप आत्मा को परब्रह्म से जोड़ता है। भारतीय संस्कृती इसी प्रेम की पूजा करती है।

२१. सिपाहियों की अपेक्षा क्रमशः उनके उच्च अधिकारियों का व्यवहार यही दर्शाता है कि जो व्यक्ति जितना ही महान होता है उसकी बोली उतनी ही सत्य, मधुर, सभ्य और शालीन होती है।

२२. परमहंसों का जीवन संसार के सामान्य लोगों से भिन्न होता है। उनकी अटपटी चाल को समझ पाना भी सबके लिये सम्भव नहीं होता। कोई विरला ही भाग्यशाली होता है, जो उनकी आत्मा के अन्दर विराजमान परब्रह्म की छवि को पहचान पाता है और उन पर अपना सर्वस्व न्योछावर करता है। करोड़ों तीर्थों में वास करने तथा किसी मन्त्र के करोड़ों जप से भी कोई उतना पवित्र नहीं हो सकता, जितना किसी ब्रह्ममुनि की सानिध्यता से होता है।

२३. संसार के रिश्ते प्रायः स्वार्थ पर ही टिके होते हैं। बुढ़ापे में भी ये रिश्ते परमात्मा की तरफ जाने में बाधा डालते हैं। विवेकवान पुरुष की शोभा वानप्रस्थ या सन्यास ग्रहण कर ध्यान का अभ्यास

करते हुए धर्मोपदेश देने से होती है, पोते–पोतियों के मोह में पड़ने से नहीं।

२४. धर्म के लक्षणों से कोसों दूर रहने वाले कर्मकाण्डियों के लिये जन्मना जाति–पाति और छूतछात ही धर्म होता है। परब्रह्म के ज्ञान और भक्ति से इनका दूर का भी रिश्ता नहीं होता और न किसी ब्रह्ममुनि (जिनके हृदय में स्वयं परब्रह्म विराजमान होते हैं) का ये सम्मान ही करना जानते हैं।

२५. बुद्ध जब ज्ञान प्राप्त करके अपनी जन्मभूमि लौटे थे तो उनके हाथ में भिक्षापात्र था। उन्हें भिक्षा मांगते देखकर महाराज शुद्धोधन भी रो पड़े थे। आज महाराज जी भी अपनी जन्मभूमि आये हैं। उनके पास है, मात्र कमर में लंगोटी, हाथ में कमण्डल और कांधे पर कम्बली। किसी को भी यह पता नहीं कि इस जर्जर शरीर के अन्दर अनन्त ब्रह्माण्डों के स्वामी प्रियतम प्राणनाथ जी की छवि विराजमान है।

२६. सत्य की राह पर चलने वाला कभी अपनी सत्यता का विज्ञापन नहीं देता। वह स्वयं ही साक्षी स्वरुप होता है। क्या सूर्य को अपने उगे होने का विज्ञापन देना पड़ता है ?निन्दा, अपशब्द, और तिरस्कार मिलने पर भी ब्रह्ममुनियों के चेहरे पर कोई विकार नहीं पैदा होता, क्योंकि उनके अन्दर तो सत्, चित् और आनन्द का सागर लहरा रहा होता है।

२७. सांसारिक लोग कुछ कार्यों में सफलता पाने के पश्चात् इतने अहंकार में मग्न हो जाते हैं कि वे स्वयं को कर्ता–धर्ता समझ बैठते हैं। उनका अहंकार हिमालय से भी ऊँचा हो जाता है। इसके विपरीत ब्रह्ममुनि अपने कार्यों की सफलता का सारा श्रेय प्रियतम परब्रह्म की कृपा को देते हैं।

२८. अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना करना तो प्रेम का सौदा करना है। जो प्राण की नली से भी अधिक निकट है, उससे क्या छिपा है जो रो गाकर बताया जाय ?क्या वह परमात्मा कोई साधारण सा इन्सान है जो प्रार्थना करने पर खुश हो जाता है तथा कार्य में सफलता मिल जाती है एवं न करने पर उसकी नाराजगी के कारण असफलता ही हाथ लगती है ?

२९. यदि परब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास है, तो असम्भव से लगने वाले कार्य भी सम्भव हो जाते हैं, किन्तु श्रद्धा और विश्वास की यह अनमोल सम्पदा किसी विरले को ही मिलती है।

३०. पूर्ण ब्रह्म ने इस स्वरूप को अपने से भी बड़ी शोभा दे दी क्योंकि परमधाम में भी पांचों शक्तियां एक जगह लीला नहीं करती हैं, किन्तु महामति जी के धाम हृदय में पांचों ने एक साथ लीला की है। अब तक असंख्यों ब्रह्माण्ड बन गये हैं और भविष्य में भी बनेंगे किन्तु श्री प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर अब तक न तो किसी की महिमा हुई है न वर्तमान में है और न भविष्य में होगी।

३१. जिस घास को बकरी भी आसानी से चर जाया करती है, उसी की रस्सी बना देने पर मतवाले हाथी को भी बांधा जा सकता है। निश्चित रूप से संगठन में महान शक्ति छिपी होती है, किन्तु यदि संगठन का उद्देश्य मानवता के कल्याण की ओर होता है तो उस पर परब्रह्म की विशेष कृपा बरसती है तथा उसकी शक्ति भी कई गुनी बढ़ जाती हैं।

३२. उचित नींद अति अनिवार्य है। बहुत सोना या बहुत जागना दोनों ही साधना और स्वास्थ्य की दृष्टि से वर्जित है। महापुरूषों की नकल उतनी ही करनी चाहिए, जो उनके लिये कल्याणकारी हो। सामान्य व्यक्ति में परमहंसों जैसा न तो आत्मिक बल होता है और न साधना का अभ्यास। ऐसी स्थिति में उनकी प्रत्येक लीला की नकल करना स्वयं को संकट में डालना है।

३३. ईर्ष्या की अग्नि में जलने वाला मनुष्य स्वयं को ही जलाता है। वह अपने प्रतिद्वन्दी की उतनी हानि नहीं कर पाता जितनी स्वयं की करता है। यदि

प्रतिद्वन्दी सजग रहता है और उस पर परब्रह्म की कृपा रहती है तो उसका तो बाल बांका भी नहीं होता, किन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आत्मिक तीनों ही दृष्टि से केवल अपनी ही हानि उठाता है।

३४. मायावी जीव अपने क्षणिक यौवन, धन और जाति के नशे में इतने उन्माद ग्रस्त हो जाते हैं कि वे ब्रह्ममुनियों से वार्ता करते समय सामान्य शिष्टाचार का भी पालन नहीं करते। वे यह भूल जाते हैं कि जिस नारायण की कृपा से उनके पास यौवन, धन, आयु और बुद्धि है, वे स्वयं नारायण भी ब्रह्मसृष्टियों की चरण–रज के इच्छुक रहते हैं।

३५. जब निराकार तक की साधना करने वाले योगी जन दृष्टि बन्ध कर देते हैं, अर्थात् सामने रहने पर भी नहीं दिखायी पड़ते तो महाराज श्री रामरतन दास जी के अन्दर परब्रह्म की छवि विराजमान थी। अन्तर्धान होना या दृष्टि बन्ध करना उनके लिये बच्चों के खेल जैसा था।

३६. छल और प्रपंच के जाल रचकर तथा झूठे गवाहों की फौज बनाकर किसी भी अलौकिक महापुरुष के ऊपर चरित्रहीनता का कीचड़ उछालना तो जगत् का ब्रह्मास्त्र है।

३७. संगमरमर की चमकती हुई दिवालों और सोने के थम्भों वाले मन्दिरों से संसार का कोई भी कल्याण होने वाला नहीं है। यदि ज्ञान और प्रेम की गंगा, यमुना किसी घास–फूस की झोपड़ी से प्रवाहित होती हैं तो जन–समुदाय मधुमक्खी की तरह भाग–भागकर वहां जाता है। ज्ञान और प्रेम से रहित मठ और मन्दिर हमेशा ही सुनसान बने रहते है। वहां वे ही लोग रहते हैं, जिनका आध्यात्मिकता से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

३८. महापुरुष अपने आचरण के द्वारा ही संसार के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हैं। महाराज जी ने ब्रह्मवाणी को सिर पर रखते हुए पैदल चलकर यह सन्देश दिया है कि वाणी का सम्मान किये बिना आत्मा की जागृति सम्भव नहीं है।

३९. फिसलन भरे चिकने मार्ग पर बड़े से बड़े पहलवान के भी गिर जाने की सम्भावना रहती है। ऐसे ही अध्यात्म मार्ग पर सद्गुरु के निर्देशन और धनी की कृपा के बिना बड़े से बड़ा व्यक्ति भी फिसलकर खाई में गिर सकता है।

४०. परिवार के रिश्ते स्वार्थ पर आधारित होते हैं। प्रायः किसी को किसी से सच्चा प्रेम नहीं होता। उन्हें एक दूसरे के आत्मिक कल्याण की चिन्ता भी नहीं होती, बल्कि वे तो उसे अपने आर्थिक स्रोत का मात्र साधन मानते हैं। प्रतिष्ठा और अपने अहम् की तुष्टि के लिये ही पारिवारिक लोग किसी को भी भक्ति और वैराग्य की राह पर नहीं चलने देते।

४१. सभी रसों का उद्भव करने वाली जिह्वा (रसना) ही है। यदि मनुष्य अपनी जिह्वा को वश में कर ले तो मन एवं सभी इन्द्रियों पर स्वतः ही अधिकार हो जाता है। मिर्च, खटाई, तामसिक पदार्थों एवं मोहन भोग के अधीन रहने वालों को स्वप्न में भी नहीं सोचना चाहिए कि वे अध्यात्म की ऊँची छलांग लगा सकेंगे या परमहंस अवस्था को प्राप्त कर सकेंगे।

४२. बाह्य चक्षुओं और लौकिक बुद्धि से किसी के स्वरुप की पहचान करना असम्भव है। परब्रह्म की कृपा से जब तक आत्मिक नेत्र नहीं खुलते तब तक न तो स्वयं को जाना जा सकता है, न परब्रह्म को और न किसी परमहंस को।

४३. विनम्रता का स्तर ही महानता के स्तर को दर्शाता है। योगिराज श्रीकृष्ण का याज्ञिक ब्राह्मणों के चरण धोना, जूठी पत्तले उठाना तथा अर्जुन का रथ हांकना और ईसा का कोढ़ियों के घाव धोना और बुद्ध का मल मूत्र से सने हुए अपने वृद्ध शिष्य

को नहलाना यही सिद्ध करता है कि इन महापुरुषों में विनम्रता का गुण अपने चरम पर था। जुलूस में आगे चलने, पहले स्नान करने एवं बैठने हेतु उच्च आसन के लिये विवाद खड़े करने वाले काषाय वस्त्र धारी विरक्तों को यह आत्म–मन्थन करना चाहिए कि वे किस दिशा में जा रहे हैं ?

४४. प्रेम ही जीवन का सार है। प्रेम–भक्ति से रहित जीवन निरर्थक है। सम्मान की चिन्ता करने वाला प्रेम से दूर ही रहता है।

४५. महान विभूतियों के साथ लोगों की भीड़ तो जल्दी ही इकट्ठी हो जाती है, किन्तु चमेल सिंह जैसे कुछ विरले ही होते हैं जो ज्ञान का प्रकाश पाते ही प्रेम में डूबकी लगाते हैं और परम लक्ष्य को बहुत ही कम समय में प्राप्त कर लेते हैं।

४६. ब्रह्ममुनि परमहंसों या सद्गुरु के धाम–हृदय में युगल स्वरुप की छवि विराजमान होती है। उनके साथ बीता हुआ एक–एक पल प्रियतम की सानिध्यता का अहसास कराता है।

४७. खारे जल की मछली को खारा जल ही अच्छा लगता है। वह दूध में रहना कभी भी पसन्द नहीं करेगी। तारतम लेकर भी जीव सृष्टि मायावी सुखों की ही अधिक चिन्ता करती है।

४८. जिस ब्रह्ममुनि सद्गुरू के धाम हृदय में प्रियतम परब्रह्म की शोभा विराज रही हो, उनके निर्देशन या उनकी कृपा के छांव तले होने वाले किसी भी कार्यक्रम में भला किसी वस्तु की कमी कैसे रह सकती है ?कमी तो केवल वहां होती है, जहां अपने धनबल एवं जनबल का अहंकार होता है। जिनकी स्नेह मयी गोद में हजारों सुन्दरसाथ ने अपनेपन की शीतल एवं सुगन्धित बयार का अनुभव किया..... ,जिनके नेत्रों के सुधा पान से परितृप्त हजारों सुन्दरसाथ आनन्द के सागर में विहार करने लगे..... ...,जिनके दर्शन मात्र से लाखों जीवों ने स्वयं को कृत्कृत्य माना, और उस अनन्त भवसागर को पार कर लिया, जिसमें वे लाखों जन्मों से भटक रहे थें.... ....,जिनके हृदय कमल से निकलकर मुखारविन्द से प्रवाहित होने वाली अमृतमयी वाणी शरीर में रोमांच पैदा करती रही.....,जिनकी सानिध्यता प्रियतम परब्रह्म के आभा मण्डल की छाया का अहसास कराती रही।

४९. किन्तु, प्रेम से पुकारने वालों के दिल में वे अब भी वैसे ही प्रकट होते हैं, बातें करते हैं, हंसते हैं और आनन्द के सागर में स्नान कराते हैं। वे किसी भी स्थिति में हमसे अलग नहीं हो सकते।

५०. संसार के रिश्ते टूटते रहते हैं। आत्मा तथा परमात्मा का सम्बन्ध अनादि और अखण्ड है। जहां कोई भी सहारा नहीं होता वहां परमात्मा ही आधार होता है।

५१. इस सृष्टि में हमेशा से ही यह होता आया है कि बड़ी मछली छोटी मछिलियों को निगलती रही है। तात्पर्य बडे लोग छोटों को दबातें आयें है।

५२. मरने के बाद मनुष्य एक कण भी अपने साथ नहीं ले जाता फिर भी वह धन कमाने में इतना बेसुध हो जाता है कि पाप की गठरी अपने सिर पर लादने में जरा भी संकोच नहीं करता।

५३. नारी ही निर्मात्री है। अध्यात्मवादी नारी जहाँ सृष्टि को स्वर्ग बनाने की सामर्थ्य रखती है वहीं भोगवादी नारी पृथ्वी को नरक में भी परिवर्तित कर सकती है।

५४. नदियों के बहते प्रवाह को तो रोका जा सकता है, किन्तु शुद्ध वैराग्य के वेग को नहीं रोका जा सकता है।

प्रणाम जी

संकलन कर्त्ता

बृजेश निजानंदी

दाहोद, गुजरात

सुन्दरसाथ से अनुरोध

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी आप सभी को यह विदित होगा कि हमारी 'तारतम मंजरी मासिका पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य जन–जन के हृदय में सत्य ज्ञान का प्रकाश एवं श्री प्राणनाथ जी के वाणी को प्रचारित करना है।

अतः इस पुनीत कार्य में आपकी सहायता अपेक्षित है, तारतम मंजरी पत्रिका में लेखों की कमी है, यदि आपके के अन्दर किसी भी प्रकार के सद्विचार उत्पन्न होते हैं तो अपनी लेखनी के द्वारा उन विचारों को लेखों में परिवर्तित कीजिए और अपने सद्विचारों को इस पत्रिका के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाइए।

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S.A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया

1. खाता धारक का नाम–श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रष्ट
   खाता संख्या–3290805513
2. खाता धारक का नाम–श्री ज्ञानपीठ प्रकाशन
   खाता संख्या– 3290804553

पता–शाखा–सरसावा, सहारनपुर उ. प्र.
247232
MICR-Code" 247016005
IFSC CODE-CBIN0282531

सामान्य खाता संख्या
१३३५०००१००१११६१६
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

साहित्य खाता संख्या
१३३५०००१००११८७५१
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

भवन निमार्ण खाता संख्या
३४६७११८८७६७
भारतीय स्टैट बैंक
(११४३६) सरसावा, सहारनपुर
उत्तरप्रदेश, पिन- २४७२३२
IFS CODE- SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से प्रकाशित साहित्यों की सूची

क्र. स.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	किरंतन टीका	300.00
2.	खिलवत टीका	150.00
3.	सागर टीका	170.00
4.	श्रृंगार टीका	300.00
5.	सिन्धी टीका	150.00
6.	परिक्रमा टीका	275.00
7.	परिक्रमा टीका (अंग्रजी)	350.00
8.	विद्वत्दमनी	200.00
9.	धाम सुषमा	60.00
10.	पटदर्शन	200.00
11.	दोपहर का सूरज (हिन्दी)	60.00
12.	दोपहर का सूरज (अंग्रेजी)	80.00
13.	प्रेम का चाँद	65.00
14.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00
15.	बोध मंजरी (अंग्रेजी)	15.00
16.	बोध मंजरी (नेपाली)	30.00
17.	ज्ञान मंजूषा	20.00
18.	हमारी रहनी	50.00
19.	अमृत बिन्दु	10.00
20.	सत्यांजलि	40.00
21.	बाल युवा संस्कार	10.00
22.	संस्कार पद्धति	15.00
23.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
24.	चितवनी	05.00
25.	चितवनी नक्शा	30.00
26.	नित्य पाठ (चौपाई)	15.00
27.	नित्य पाठ (बीतक)	05.00
28.	मेहर सागर	10.00
29.	श्रृंगार के मोती	15.00
30.	सागर के मोती	10.00
31.	अनमोल मोती	05.00
32.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
33.	अनमोल मोती तफसीरे हुसैनी	50.00
34.	जामिल–ए–मारिफल	30.00
35.	फरमान	30.00
36.	बुलंद मुकदमा बड़ा मसौदा	40.00
37.	शब–ए–मेअराज	15.00
38.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
39.	Supreme Truth God	20.00
40.	सी. डी., डी. वी. डी. तथा एम. पी थ्री. (गायन एवं चर्चा)	
41.	जागो और जगाओ	100.00
42.	निजानन्द योग	60.00
43.	ब्रह्मवाणी चर्चा	40.00
44.	सेवा पूजा	30.00
45.	मुख्तार–ए–हिंद	20.00
46.	Nijanand School	120.00
47.	श्री मुखवाणी संगीत (राग सहित)	150.00
48.	प्रश्नमाला	05.00
49.	प्राणनाथ महिमा (हिन्दी)	20.00
50.	प्राणनाथ महिमा (गुजराती)	20.00
51.	बोध मंजरी (गुजराती)	15.00
52.	सिनगार (गुजराती)	300.00
53.	सागर (गुजराती)	170.00
54.	चितवनी (गुजराती)	05.00
55.	कैलेंडर	10.00
56.	स्टीकर (प्रणाम जी)	30.00
57.	बड़ा स्टीकर (प्रणाम जी)	125.00
58.	बोध मंजरी (उड़ीया)	15.00
59.	श्री मुखवाणी संगीत	60.00